अध्याय 5

अफ़्रीका में गांधीजी के संघर्षमय कार्य

जहाज से उतरने पर गांधीजी का अबदुल्ला सेठ ने उत्साह के साथ स्वागत किया। गांधीजी ने ज्यों ही अपने भाई की चिट्ठी सेठ के हाथों में दी, सेठ उसे पढ़कर असमंजस में पड़ गए। उन्हें बैरिस्टर गांधी को पौने दो हज़ार फीस के अलावा आने-जाने का जहाज किराया भी देना था। उनके रहने-खाने आदि का प्रबंध भी उन्हें ही करना था। गांधीजी का साहबी ठाठ देखकर सेठ को लगा कि भाई ने तो मेरे यहाँ सफेद हाथी बँधवा दिया है। उस समय उनके पास कोई काम नहीं था। उनका दीवानी मुक़दमा ट्रांसवाल में चल रहा था। जिस पर उन्होंने मुक़दमा चला रखा था, वह ट्रांसवाल में चल रहा था। जिस पर उन्होंने मुक़दमा चला रखा था, वह ट्रांसवाल की राजधानी प्रीटोरिया में रहता था। वे बैरिस्टर को वहाँ अकेला भेजने में झिझक रहे थे। मन में शक था कि कहीं यह बैरिस्टर विपक्षी से मिलकर मामला चौपट न कर दे। अनेक प्रकार की शंकाओं में सेठ का मन आगे-पीछे हो रहा था। सेठ के पास उस समय गांधीजी के लिए दो ही काम थे, एक मुक़दमे का और दूसरा क्लर्की का। सेठ स्वयं बहुत कम पढ़े-लिखे थे, परन्तु व्यवहार-ज्ञान में कम नहीं थे। कामचलाऊ अंग्रेज़ी जानकर अंग्रेज़ व्यापारियों से लेन-देन का काम चला लेते थे। उनका व्यापार बहुत फैला हुआ था। उनके अपने जहाज भी चलते थे। भारतीय उनका बड़ा सम्मान करते थे।

पगड़ी उतारो

सेठ अब्दुल्ला अपने बैरिस्टर को कचहरी दिखाने ले गए। वहाँ उन्होंने वकीलों से परिचय कराया और फिर एक मजिस्ट्रेट की अदालत में ले गए। मजिस्ट्रेट बड़ी देर तक उन्हें घूरता रहा, फिर बोला, 'तुम अपनी पगड़ी उतारो'। गांधीजी उस समय बंगाली पगड़ी पहने हुए थे। उन्होंने मजिस्ट्रेट की आज्ञा मानने से इन्कार कर दिया और अदालत के बाहर निकल आए। गांधीजी का अंग्रेज़ों से यह पहला मोर्चा था। बाहर निकलकर उन्होंने सोचा कि पगड़ी के स्थान पर टोप क्यों न लगाया जाए पर सेठ को उनका यह विचार पसन्द नहीं आया। उन्होंने कहा, 'बैरिस्टर साहब, यदि आप इस समय ऐसा करेंगे तो उसका प्रभाव उल्टा होगा। भारतीयों पर और कड़े अपमानजनक बंधन लगाने का उन्हें प्रोत्साहन मिलेगा। एक बात और है, टोप लगाने पर गोरे आपको वेटर कहने लगेंगे।' गांधीजी को सेठ की सलाह अच्छी लगी। उन्होंने पगड़ी-काण्ड को अख़बारों में छपवाया, जिससे तीन-चार दिनों में ही दक्षिण अफ़्रीका में उनकी प्रसिद्धि हो गई।

सेठ के प्रतिवादी और अटार्नी (वकील) प्रीटोरिया में रहते थे। बैरिस्टर गांधी को वहाँ जाकर मामले को स्वयं समझना था और अटार्नी को समझाना था। सेठ ने उन्हें पहले दर्जे का टिकिट लेकर रेल के पहले दर्जे के डिब्बे में बैठा दिया। गाड़ी जब रात के लगभग नौ बजे नैटाल की राजधानी मैरिट्सबर्ग पहुँची, तो उस डिब्बे में एक अंग्रेज़ घुसा और एक काले आदमी को देखकर पहले तो चौंका फिर रेल अधिकारी को ले आया और अपमान-भरी आवाज़ में बोला, 'उतर, दूसरे डिब्बे में जा'। गांधीजी ने कहा कि मेरे पास पहले दर्जे का टिकट है। मैं दूसरे

डिब्बे में नहीं जा सकता। गोरे ने जिद की और अशिष्टता से बोला, 'नहीं उतरेगा तो तुझे जबरदस्ती उतारा जाएगा'। गांधीजी नहीं उतरे और सचमुच उन्हें जबरदस्ती उतार दिया गया और उनका सामान प्लेटफार्म पर फेंक दिया गया। गांधीजी रेलवे कर्मचारियों से बहस करते ही रहे और गाड़ी प्लेटफार्म छोड़कर आगे बढ़ गई। रात बीतती जा रही थी, कड़ाके की सर्दी पड़ रही थी। गांधीजी ठिठुरते-काँपते वेटिंग रूम में बैठे रहे। रात-भर बैठे-बैठे सोचते रहे- 'क्या मुझे अपने अधिकारों के लिए लड़ना चाहिए या चुपचाप स्वदेश लौट जाना चाहिए। परन्तु मुक़दमे को अधूरा छोड़कर भागना भी तो कायरता होगी। मुझ पर आज जो बीती है, वह एक महारोग का लक्षण है। यहाँ भारतीय इसी तरह से अपमानों को सहते आ रहे हैं। कुछ भी हो, मैं प्रत्येक स्थिति का सामना करूँगा, राग-द्वेष से दूर रहकर अन्याय का विरोध करूँगा।' यह अन्तरात्मा की आवाज़ थी, जिसने उनके भावी कार्यक्रम की रूपरेखा निश्चित कर दी।

सबेरे गांधीजी ने सेठ अब्दुल्ला को तार भेजकर रात वाली घटना की सूचना दी, जिससे सेठ ने तुरन्त स्टेशन मास्टर को उन्हें रेल-यात्रा की सुविधा देने के लिए तार दिया और बीच के स्टेशनों पर अपने लोगों को गांधीजी से मिलने के लिए तार द्वारा सूचना दी। गांधीजी पुनः गाड़ी में बैठे। गाड़ी उन्हें चार्ल्स टाउन ले गई। चार्ल्स टाउन से प्रीटोरिया तक रेल नहीं थी। इसलिए कोच में यात्रा करनी पड़ती थी। वहाँ से उन्हें कोच-सिकरम (घोड़ागाड़ी) में यात्रा करनी थी। कोच के एजेंट ने गांधीजी के टिकट को स्वीकार नहीं किया। यद्यपि गांधीजी बैरिस्टर थे, पर थे तो भारतीय और गोरे लोग भारतीयों को कुली ही समझते थे। गांधीजी के बहुत झगड़ने पर एजेंट ने उन्हें कोचबॉक्स पर बैठने की अनुमति दे दी। गांधीजी कोच के भीतर बैठना चाहते थे, पर एजेंट जब उन्हें कोच में ले जाने के लिए राजी ही नहीं था, तब 'अर्द्ध त्यजेत् सः पंडितः' (अर्द्ध तजहिं बुध सर्वस जाता) की नीति को स्वीकार कर बाहर कोचबॉक्स पर बैठ गए, क्योंकि उन्हें प्रीटोरिया शीघ्रातिशीघ्र पहुँचना था। जब कोच अगले मुकाम पर पहुँची, तो जिस गोरे ने उन्हें कोचबॉक्स पर बैठने की अनुमति दी थी, उसी ने उन्हें पुनः उठाने की कोशिश की- 'अब तुम नीचे बैठो, मैं ड्राइवर के पास बैठूँगा'।

'अरे तुम्हीं ने तो मुझे बॉक्स पर बैठाया था, अब तुम मुझे अपने पैरों के नीचे बैठाना चाहते हो, मैं हरगिज नहीं बैठूँगा। अब मैं कोच के भीतर बैठूँगा।' गोरा गांधीजी के दृढ़तापूर्ण उत्तर में चिढ़ गया। उसने उनके सिर पर चोट की और जबरन उन्हें बॉक्स से नीचे उतारने की कोशिश करने लगा। गांधीजी कोचबॉक्स की लोहे की छड़ को मजबूती से पकड़े रहे और मार खाते रहे। यह अमानवीय दृश्य देखकर कुछ अंग्रेज़ यात्रियों की मानवता जागी और उन्होंने उन्हें कोच के भीतर बैठाना स्वीकार कर लिया। इसी प्रकार वे जोहेंसवर्ग पहुँचे। प्रीटोरिया पहुँचने के पूर्व उन्हें इस नगर में ठहरना पड़ा, क्योंकि जिस व्यक्ति से उन्हें यहाँ मिलना था, वह नहीं पहुँच पाया था। वे वहाँ के एक बड़े होटल में पहुँचे और ठहरने के लिए कमरा माँगा। मैनेजर ने जगह न होने की बात कहकर उन्हें टाल दिया। तब वे एक भारतीय की दुकान पर गए। जब उन्होंने उसे अपनी बीती सुनाई, तो उसने कहा, 'भाई, ऐसी घटनाएँ तो हम लोगों के साथ प्रायः घटती ही रहती हैं। होटल में कमरे नहीं मिलते, हम गोरों के साथ बैठकर खाना नहीं खा सकते, पहले-दूसरे दर्जे में हम रेल-यात्रा नहीं कर सकते, बसों में इज्जत से नहीं बैठ सकते, क्या कहें हज़ारों मुसीबतें हैं।'

गांधीजी को रेल-यात्रा कर प्रीटोरिया जाना था और वे पहले दर्जे में ही यात्रा करना चाहते थे। उन्होंने

स्टेशन मास्टर को एक चिट्ठी लिखी कि मैं बैरिस्टर हूँ, हमेशा फर्स्ट क्लास में यात्रा करता हूँ, मुझे जल्दी फर्स्ट क्लास का टिकिट चाहिए। चिट्ठी भेजने के बाद वे पाश्चात्य वेशभूषा में गए। स्टेशन मास्टर ने उन्हें फर्स्ट क्लास का टिकट दे तो दिया, पर यह प्रार्थना भी कि यदि मार्ग में कोई फर्स्ट क्लास के डिब्बे से उतार दे, तो आप रेलवे के विरुद्ध कानूनी कार्रवाई न करें। गांधीजी ने उसकी बात मान ली।

गांधीजी फर्स्ट क्लास के डिब्बे में बैठे ही थे कि गार्ड टिकिट चैक करने के लिए वहाँ पहुँचा और उनसे थर्ड क्लास में जाने के लिए आग्रह करने लगा। सौभाग्य से एक अंग्रेज़ यात्री ने उन्हें अपने साथ यात्रा करने देने में अपनी सहमति प्रकट की। गार्ड झल्लाकर बड़बड़ाया- 'अगर तुम गोरे लोग काले कुली के साथ बैठना पसन्द करते हो तो मुझे क्या करना है, भाड़ में जाओ तुम सब'।

गांधीजी की यह रात्रि-यात्रा शांतिपूर्ण निपट गई। प्रातः प्रीटोरिया स्टेशन पर जब गाड़ी पहुँची, तो उन्हें लेने कोई नहीं आया। उनका किसी होटल में जाने का साहस नहीं हुआ। उन्हें सोच-विचार में देखकर एक अमरीकी नीग्रो उनकी सहायता के लिए तैयार हो गया। वह उन्हें एक अमरीकी होटल में ले गया। मैनेजर ने उन्हें इस शर्त पर ठहराना स्वीकार किया कि वे अपने कमरे में ही भोजन करें, भोजन करने के बड़े कमरे में नहीं। मैनेजर भला आदमी था। गांधीजी से बोला, 'मुझे आपको डायनिंग हॉल (भोजन के कमरे) में बैठालने में कोई आपत्ति नहीं है, परन्तु मेरे गोरे ग्राहक काले आदमियों के साथ खाने में आपत्ति उठाते हैं।' फिर भी मैनेजर ने एक बार अपने गोरे ग्राहकों से पूछा कि भारतीय बैरिस्टर हैं। आप लोगों के साथ भोजन-कक्ष (डायनिंग हॉल) में बैठकर भोजन करना चाहता है। जब गोरों ने आपत्ति नहीं उठाई, तो गांधीजी ने उनके साथ बैठकर भोजन करना प्रारम्भ कर दिया।

दूसरे दिन गांधीजी सेठ अब्दुल्ला के मुक़दमे के काम में लग गए। मामला पेचीदा था। हिसाब-किताब की बड़ी उलझनें थीं। गांधीजी को स्वयं अध्ययन कर अटार्नी को उसकी पेचीदगियाँ समझानी थीं। मामले को ठीक समझने के बाद उन्हें ऐसा लगा कि यदि वादी-प्रतिवादी में समझौता न हुआ हो, तो दोनों अदालत के खर्च में पिस जाएँगे। जीतने वाला भी आर्थिक दृष्टि से हार में रहेगा। उन्होंने सेठ अब्दुल्ला को पंच-फैसले पर राजी कर लिया। इस तरह वादी-प्रतिवादी में आपस में समझौता कराने में गांधीजी सफल हुए। गांधीजी को अपनी सफलता पर बेहद खुशी हुई। उन्हें वकालत करने का सच्चा गुर मिल गया। उन्होंने आत्मकथा में लिखा है- 'इस मामले से मैंने मानव स्वभाव के अच्छे पक्ष को पहचानना जान लिया और मनुष्य के हृदय को जीतने की कला सीख ली।' गांधीजी ने लगभग बीस वर्ष तक वकालत की। उन्होंने कई मामलों में वादी-प्रतिवादी को कचहरी में न ले जाकर आपस में समझौते कराकर सन्तुष्ट किया। वे समझौते के मार्ग से मुक़दमा निपटाने को अपनी जीत माना करते थे। झूठे मुक़दमे की वे कभी पैरवी ही नहीं करते थे। अदालत के सामने जाने पर भी यदि उन्हें अपने मुवक्किल का पक्ष असत्य जान पड़ता, तो वे जज के सामने उसे प्रकट कर देते। इससे अच्छा प्रभाव पड़ता। झूठा मुक़दमा लेकर कोई मुवक्किल उनके पास आने का साहस नहीं करता था।

प्रीटोरिया में सेठ अब्दुल्ला के मामले में समझौते कराकर गांधीजी डर्बन लौट गए और भारत लौटने की तैयारी करने लगे। जब सेठ उन्हें विदाई-भोज दे रहे थे, उसी समय उनके हाथ में किसी ने 'नैटाल मर्करी' नाम का अख़बार दे दिया, उसमें नैटाल विधानसभा की रिपोर्ट छपी थी, जिसमें भारतीयों को मताधिकार से वंचित करने वाला

विधेयक विधानसभा के अगले सत्र में उपस्थित करने की बात थी। पढ़ते ही उन्होंने भारत जाने का विचार स्थगित कर दिया और विधानसभा में पेश करने के लिए एक दरख्वास्त तैयार की। साथ ही सरकार से विधानसभा की कार्रवाई स्थगित करने की अपील भी की। गांधीजी ने सेठ अब्दुल्ला के सभापतित्व में विरोध-कमेटी कायम की। कमेटी के सभापति की हैसियत से सेठ ने विरोध का तार भेजा। सन् 1894 में भारतीयों की ओर से इस प्रकार के प्रार्थना पत्र और तार भेजने का यह प्रथम अवसर था। परिणाम यह हुआ कि विधानसभा की कार्रवाई दो दिन के लिए स्थगित कर दी गई। पर दो दिन पश्चात् वाली बैठक में यह बिल पास हो गया। गांधीजी ने उस समय राष्ट्रीय विचारों के नेता दादाभाई नैरोजी को, जो ब्रिटिश पार्लियामेंट के सदस्य थे, दक्षिण अफ्रीका की घटनाओं से परिचित कराया। उन्होंने बड़ी नम्रता से उन्हें पत्र लिखा- 'मैं अनुभवहीन नवयुवक हूँ, मुझसे भूल हो सकती है। जो जिम्मेदारी मैंने अपने कंधे पर उठाई है, वह भारी है। आप मुझे समय-समय पर परामर्श देते रहें'।

भारतीयों को अभी तक किसी आन्दोलन का अनुभव नहीं था। गांधीजी की प्रेरणा से उन्हें अपने अधिकारों को समझने की उत्सुकता पैदा हुई। नया उत्साह भर गया, नई उमंग दौड़ गई। सभाएँ होने लगीं। चंदा एकत्र होने लगा। पुराने बसे हुए भारतीयों ने बड़े उत्साह से काम करना शुरू कर दिया। ब्रिटिश उपनिवेश मंत्री लार्ड रिपन के पास नैटाल विधानसभा के पास हुए बिल के विरुद्ध दस हज़ार भारतीयों के हस्ताक्षरों सहित दरख्वास्त भेजी गई।

गांधीजी ने जब पुनः भारत लौटने की इच्छा प्रकट की, तो भारतीयों ने बड़ी मनुहार कर उन्हें जाने नहीं दिया। ऐसी स्थिति में गांधीजी ने भारतीयों के हितों की रक्षा के लिए एक स्थायी संगठन बनाया और उसका नाम नैटालई इंडियन कांग्रेस रखा। इसकी स्थापना 22 अगस्त, 1914 के दिन हुई।

सेठ अब्दुल्ला कांग्रेस के अध्यक्ष और बैरिस्टर गांधी उनके मंत्री चुने गए। एक ही महीने में लगभग दो सौ सदस्य बना लिए गए, जिनमें हिन्दू, मुसलमान, पारसी और ईसाई सभी शामिल थे। समान संकट के समय जाति-विरोध भूलकर सभी एक हो गए थे।

लार्ड रिपन को जो प्रार्थना-पत्र भेजा गया था, उसका असर हुआ। उन्होंने नैटाल विधानसभा का, भारतीयों को मतदान से वंचित करने वाला कानून अमान्य कर दिया। इससे भारतीयों में हर्ष की लहर फैल गई।

अब गांधीजी ने भारतीय समाज की भीतरी समस्याओं पर ध्यान दिया। गोरों का यह आक्षेप बहुत अंशों में ठीक था कि भारतीय सफाई से नहीं रहते। अतः गांधीजी ने सबसे पहले भारतीयों को घरों की सफाई और व्यक्तिगत स्वास्थ्य तथा स्वच्छता के नियम पालने का उपदेश देना प्रारम्भ कर दिया। समय-समय पर भाषणों के आयोजन होने लगे। उनमें गांधीजी अपने विचारों को प्रकट करने लगे। उन्होंने भारतीयों को अपनी सामाजिक स्थिति के अनुरूप अच्छे ढंग से रहना सिखलाया। नैटाल में गुजराती जानने वाले भारतीयों की संख्या अधिक थी, इसलिए सभाओं की कार्रवाई गुजराती में ही रखी जाती थी। लोकमत तैयार करने के लिए उन्होंने नैटाल-भारतीय शिक्षण संघ की स्थापना की। इस संस्था के माध्यम से पुराने भारतीयों के बच्चों को शिक्षित कर वे उनमें मातृभूमि का प्रेम जागृत करना चाहते थे। संस्था के सदस्य नियमित रूप से एकत्र होते, भाषण देते या लेख पढ़कर अपने विचार व्यक्त किया करते थे। नैटाल कांग्रेस दक्षिण अफ्रीका की ब्रिटिश जनता और भारतीय जनता को प्रवासी भारतीयों की स्थिति से परिचित कराना चाहती थी। गांधीजी जो भी लिखते, उसमें सच्चाई होती। वे बढ़ा-चढ़ाकर कोई बात न

लिखते, न बोलते थे। ट्रांसवाल और केपटाउन में भी नैटाल कांग्रेस के समान संस्थाएँ थीं। यद्यपि उनके संविधान भिन्न थे, पर उद्देश्य एक थे।

गांधीजी ने भारतीय कुलियों की जो दशा देखी, वह बड़ी करुण थी। एक दिन उनके दफ़्तर में बाल सुन्दरम् नामक एक तमिल कुली फटे चिथड़ों में उनके पास आया। उसके सामने के दो दाँत टूटे हुए थे और मुँह से खून बह रहा था। वह हाथ में पगड़ी रखे हुए था (क्योंकि गोरे काले कुली के सिर पर पगड़ी देखकर सहन नहीं करते थे)। यह दृश्य देखकर उनका हृदय दहल उठा। उन्होंने उसे पगड़ी पहनने, साफ-सफाई के साथ इज्जत से रहना सिखलाया। बाल सुन्दरम् एक अंग्रेज के घर काम करता था। उसने उसे इतनी बुरी तरह पीटा था कि उसके दाँत उखड़ गए थे और मुँह से खून बह रहा था। वह गांधीजी को अपना दुखड़ा सुनाने आया था। भारतीयों को उनके मालिक गुलाम समझते थे और उनसे सुन्दरम् के समान निर्दय व्यवहार करते थे।

1894 में नैटाल सरकार ने प्रवासी भारतीयों पर पच्चीस पौंड वार्षिक कर लगाना चाहा, क्योंकि वे अपने परिश्रम से गोरों की अपेक्षा अधिक कमाने लगे थे। दक्षिण अफ्रीका में उनका भविष्य में प्रवेश न हो, इस दृष्टि से वे उन पर तरह-तरह के सख्त प्रतिबंध लगाना चाहते थे। कई भारतीय, जो कुली बनकर आए थे, धीरे-धीरे मकान और ज़मीन के मालिक बनने लगे। गोरे उन्हें समान अधिकार नहीं देना चाहते थे। प्रवासी भारतीयों पर वार्षिक कर लगाने के पहले नैटाल सरकार को भारत सरकार से अनुमति लेना आवश्यक था। नैटाल सरकार के बहुत ज़ोर देने पर भारत सरकार ने कर तो रहने दिया, पर पच्चीस पौंड के स्थान पर केवल तीन पौंड कर लगाने की अनुमति दे दी। इस कर के बुरे परिणामों की ओर भारतीय नेताओं का भी ध्यान गया। भारतीय नेता गोपालकृष्ण गोखले ने कहा था कि, 'इससे संयुक्त परिवार बिगड़ जाएगा, पुरुष अपराध करने लगेंगे।' गांधीजी को इन करों को रद्द कराने के लिए कड़ा संघर्ष करना पड़ा।

गांधीजी जब नैटाल में बस गए, तब भी प्रीटोरिया के ईसाई मित्र उन्हें नहीं भूले। डर्बन में ईसाई-मिशन के प्रमुख पादरी उनके घनिष्ठ मित्र बन गए। उनके साथ उन्होंने ईसाई-धर्मग्रन्थों का, विशेषकर बाइबिल का अध्ययन किया, साथ ही हिन्दू-धर्मशास्त्र भी पढ़े। मैक्समूलर के ग्रन्थ, उपनिषद, मोहम्मद साहब की जीवनी और पारसियों के ग्रन्थ भी पढ़े। कुछ समय तक योगाभ्यास भी किया। टॉल्सटाय के ग्रन्थों का उनके मन पर बड़ा प्रभाव पड़ा। उनके दक्षिण अफ्रीका के कार्यों का भारत में अच्छा प्रचार हुआ। प्रवासी भारतीयों की दशा का ज्ञान भारतीयों को होने लगा।

भारत प्रस्थान

पच्चीस वर्ष के तरुण गांधी ने दक्षिण अफ्रीका के प्रवासी भारतीयों पर ढाए जाने वाले ज़ुल्मों के विरुद्ध आन्दोलन का श्रीगणेश कर गोरों के हृदय दहला दिए। कुली बैरिस्टर अब उन्हें फूटी आँखों नहीं सुहाता था। वे सेठ अब्दुल्ला के दीवानी मुक़दमे की पैरवी करने एक वर्ष के लिए आए थे। उन्होंने दोनों पक्षों में समझौता कराकर उसे अवधि के पूर्व ही निपटा दिया था। उसके बाद उन्होंने भारतीयों के अधिकारों के लिए आवाज़ उठाने का काम हाथ में लिया। यद्यपि आन्दोलन समाप्त करने का समय नहीं आया था। फिर भी उन्हें देश और घर की जिम्मेदारी भी अनुभव हो रही थी। तीन वर्ष हो चुके थे। सच्चाई के कारण उनकी वकालत चमकने लगी थी। उन्होंने अफ्रीका में ही बसकर वकालत करने का इरादा किया था, साथ ही भारतीयों के अधिकारों की सुरक्षा के लिए समय-समय पर

आन्दोलन करना भी उनका उद्देश्य था, जिनका श्रीगणेश वे कर चुके थे। स्वदेश वे अपनी पत्नी और बच्चों को लाने के लिए जाना चाहते थे।

सन् 1896 में उन्होंने जहाज से कलकत्ता (कलिकाता) की ओर प्रस्थान किया। लम्बी यात्रा थी। समय काटना था। इसलिए उसका सदुपयोग करने की दृष्टि से उन्होंने तमिल और उर्दू सीखी। दिल बहलाने के लिए कभी-कभी शतरंज भी खेलते रहते। जब जहाज हुगली पहुँचा तो मातृभूमि के दर्शन कर गांधीजी का हृदय उत्फुल्ल हो उठा। भारत माँ की मूर्ति कल्पना में झूलने लगी। हृदय वंदेमातरम् बोल उठा। सचमुच उस समय वे बहुत भावुक हो उठे। उनके मुख से निकल पड़ा- 'के बोले माँ, तुमि अबले'।

कलकत्ता (कोलकाता) में गांधीजी का किसी से परिचय नहीं था, फिर भी देशी और अंग्रेज़ी भाषाओं के पत्रकारों से मिलने गए। उन्हें 'स्टेट्समैन', 'दि इंग्लिशमैन' के सम्पादकों ने बड़ा प्रोत्साहन दिया। उन्होंने प्रवासी भारतीयों पर होने वाले अन्यायों की घटनाओं को सुनकर लेख लिखे। कलकत्ता (कोलकाता) से गांधीजी राजकोट के लिए रवाना हुए। मार्ग में इलाहाबाद में गाड़ी बहुत समय तक रुकती थी, अत: उन्होंने इस समय का भी उपयोग किया। वे 'पायोनियर' के दफ़्तर में गए, उसके सम्पादक से मिले और उसे प्रवासी भारतीयों की दुर्दशा से परिचित कराया। 'पायोनियर' के सम्पादक ने समाचारों, अग्रलेखों और टिप्पणियों से उनके विचारों का ज़ोरदार समर्थन किया।

राजकोट पहुँचने पर वे शांत नहीं बैठे। उन्होंने प्रवासी भारतीयों की दयनीय अवस्था और उन पर गोरों के अत्याचारों की हृदय-विदारक घटनाओं से भरी एक पुस्तिका लिखी। उसका आवरण पृष्ठ हरा था। इसलिए वह 'हरी पुस्तिका' के नाम से मशहूर हो गई। इसकी प्रतियाँ भारत और इंग्लैंड के समाचार पत्रों को भेजी गई। अफ्रीका के गोरों के हाथों में जब वह पड़ी, तो वे क्रोध से आग-बबूला हो उठे। उन्होंने निश्चय कर लिया कि गांधीजी को दक्षिण अफ्रीका में नहीं रहने देंगे। यदि वह अफ्रीका लौटा, तो उसे उतरने से रोकेंगे और यदि उतरा, तो उसे समाप्त कर देंगे।

राजकोट पहुँचने के बाद उन्हें ज्ञात हुआ कि बंबई (मुंबई) में प्लेग से बहुत जन-हानि हो रही है। वे अपने प्राणों की परवाह न कर बंबई (मुंबई) दौड़े गए और जनता को प्लेग से बचने के उपाय समझाने लगे। उन्होंने देखा कि धनी मानी लोग भी अपने घरों की सफाई नहीं करते, जिससे हवा दूषित होती है। उन्होंने ग़रीब और अमीर दोनों को समझाया कि प्लेग से बचने का उपाय स्वच्छता और वायु की शुद्धता है।

बंबई (मुंबई) में वे प्रसिद्ध नेताओं और कार्यकर्त्ताओं से मिले। उन्हें गोपालकृष्ण गोखले ने बहुत प्रभावित किया। वे उन्हें अपना राजनीतिक गुरु मानने लगे। समय-समय पर अपनी समस्याओं का उनसे समाधान प्राप्त करने लगे। गोखले भी उनकी समाज सेवा के कारण, उनसे पुत्रवत् व्यवहार करने लगे। गांधीजी बंबई (मुंबई) से मद्रास गए। तमिल कुली बाल सुन्दरम् की करुण कहानी सारे प्रदेश में फैल चुकी थी। गांधीजी दक्षिण अफ्रीका के मजदूरों और कुलियों के हितों की रक्षा करते थे। यह जानकर बहुत-से तमिल-भाषी उनसे मिलने आए। गांधीजी ने थोड़ी तमिल सीखी अवश्य थी, पर वे उसे ठीक तरह से बोल नहीं पाते थे। विदेशी भाषा में बोलना पसन्द नहीं था, परन्तु विवश हो उन्हें अंग्रेज़ी में ही तमिल-भाषी जनता को अफ्रीका की स्थिति समझानी पड़ी। धीरे-धीरे गांधीजी की ओर भारतीयों का ध्यान आकर्षित होने लगा, उनके प्रति आदर पैदा होने लगा।

अभ्यास

1. अफ्रीका में गांधीजी को किन-किन अपमानजनक घटनाओं का सामना करना पड़ा?
2. इन घटनाओं की गांधीजी पर क्या प्रतिक्रिया हुई?
3. गांधीजी ने भारत आना क्यों स्थगित कर दिया?
4. नैटाल में गांधीजी ने भारतीयों को कैसे संगठित किया?
5. नैटाल में गांधीजी ने भारतीय शिक्षण संघ की स्थापना क्यों की?
6. भारत में आकर गांधीजी ने प्रवासी भारतीयों की दुर्दशा से लोगों को कैसे अवगत कराया?
7. रिक्त स्थानों की पूर्ति करो-
   (क) नैटाल-इंडियन कांग्रेस की स्थापना सन् ..... में हुई।
   (ख) नैटाल-इंडियन कांग्रेस के अध्यक्ष ..... और मंत्री ..... चुने गए।
   (ग) हरी पुस्तिका का प्रकाशन ..... में हुआ था।
   (घ) गांधीजी ..... को अपना राजनीतिक गुरु मानते थे।

अब करने की बारी

1. अफ्रीका में गांधी जी के स्थान पर यदि आप होते तो क्या करते, लिखिए।
2. क्या आपको अपने आस-पास कोई ऐसा व्यक्ति दिखता है, जो स्वच्छता से नहीं रहता हो, ऐसे व्यक्ति के पास जाकर उसे स्वच्छता एवं साफ-सफाई से रहने हेतु प्रेरित करें।

❑❑